वेदों में पर्यावरण संरक्षण की परिकल्पना

डॉ0 त्रिपुरसुन्दरी*

वेद ज्ञान गङ्गा के उत्सव भारतीय संस्कृति के प्राणतत्त्व हैं। इनकी दिव्यता से समस्त भारतीय वाङ्मय प्रकाशित है। वैदिक ऋषियों ने अत्यन्त गहन एवं सूक्ष्म अध्ययन के अनन्तर प्रकृति व मानव दोनों में सह अस्तित्व एवं साहचर्य सम्बन्ध का प्रकाशन किया है। वास्तव में मनुष्य का यह पंचभौतिक शरीर प्रकृति विनिर्मित है, प्रकृति ही मनुष्य की निर्माण सामग्री है, यही संधात्री है। पंचतत्त्वों में पृथ्वी, जल, वायु, गगन, अग्नि वनस्पति, औषधि, जलचर, खेचर, सरीसृप अन्यान्य कीट इत्यादि जन्तु, पालित पशु, अरण्य पशु, शिष्ट, निसर्ग से उत्पन्न वस्तु, इनकी समष्टि को ही पर्यावरण कहते हैं, पर्यावरण का तात्पर्य चारों–ओर का आवरण। इस तरह मानव–जीवन के सभी–तरफ से आवृत करने वाला प्राकृतिक परिवेश ही पर्यावरण है। कदाचित् इसीलिए वैदिक अध्ययन व्यवस्था में पाठ्य विषय मणियों की भॉति प्रकृतिसूत्र पर अवलम्बित प्रतीत होते हैं। ऋषियों की दृष्टि ने उसकी दिव्यता का अनुभव कर विशिष्ट ज्ञान का उद्भाव कर प्रकृति में देवत्व को स्वीकार किया और दैवत भावना से प्रकृति के उपादानों की उपासना की। वास्तव में प्रकृति प्रत्यक्ष देवता है। वेदों में अग्नि, इन्द्र, वरुण, विष्णु, उषस्, तेज, जल, वायु आदि की स्तुतियाँ की गयी हैं। पंचतत्त्वों से निर्मित इस देह रक्षा हेतु यह पर्यावरण रक्षणीय है। इसी दृष्टि से उन्होंने प्रकृति की दैवतभाव से उपासना की एवं पंचमहाभूतों की पर्यावरणीय उपयोगिता को स्वीकार किया। वेदों में भावपूर्ण पर्यावरण संरक्षण की परिकल्पना के सूत्र पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, तेज आदि स्तुति रूप में दृष्टव्य हैं।

आथर्वण मन्त्र प्रचुर संख्या में पृथ्वी की प्रार्थना हेतु व्यवहृत हुए है। जो उसके वैज्ञानिक रूप को परिलक्षित कराते हैं–

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु।
सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः।।[1]

अंशकालिक प्रवक्ता, संस्कृतविभाग आर्य महिला पी0 जी0 कॉलेज

पृथ्वी समस्त प्राणियों की धरित्री है इसी से सभी उद्भूत होते हैं तथा जीवन धारण करते हैं–

विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।
वैश्वानरं विभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु।।[2]

खाद्यान्न, पेय–पदार्थ तथा स्वास्थ्य –शक्ति प्रदायक औषधियों को यही पृथ्वी प्रदान करती है। इसी पृथ्वी में सभी प्राणी पुनः तिरोभाव को प्राप्त करते हैं इसीलिए सहज रूप से सर्वतोभावेन रक्षिका, संवर्द्धनकारिणी कल्याणकारिणी पृथ्वी की श्रद्धामयी माता के रूप में ऋषिगण उपासना करते हैं एवं सुखकारी होने की प्रार्थना करते हैं–

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी।
यच्छा नः शर्म सप्रथाः।।[3]

अतः उपकारक पृथिवि तत्त्व तथा उसके संसाधनों का उपयोग करना चाहिए। अनावश्यक रूप से अति संदोहन नहीं। खनिज पदार्थों की सम्प्राप्ति हेतु भूमि का उत्खनन, वृक्षों का उच्छेदन अनियंत्रित रूप में न हो क्योंकि अनियन्त्रित दोहन का अर्थ है स्वयं का विनाश। अतः आत्म रक्षणार्थ पृथ्वी का रक्षण अत्यावश्यक है।

'जलमेव जीवनम्' अर्थात् जल जीवन का धारकतत्त्व है, जल के अभाव में जीवन धारण करना कथमपि सम्भव नहीं है। प्रकृति की दिव्य प्रसूति जलधाराएँ मनुष्य की समर्चा के अर्ह हैं, इनका सान्निध्य पाप–ताप का शमन कर आह्लाद प्रदान करने वाला है, रोग निवारक तथा भैषज्य रूप से जल की महत्ता है–

आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन महे रणाय चक्षसे।।[4]
शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शं योरभिस्रवन्तु नः।।[5]

अर्थात् दिव्य उदक से हमारे अभीष्ट की प्राप्ति हमारा कल्याण, हमारी तृषा शान्ति और हमारा रोग–निवारण हो। उदक के वैदिक सौ नाम प्राप्त होते हैं,[6] जिनमें से कई नामों के वर्णन से ऋषि भावना की कल्पना की जा सकती है, जैसे पुरिष–पुरि–इषं अर्थात् शरीर–रूपी अग्नि का यह इषं अर्थात् अन्न, भोग, उत्साह, शक्ति, स्वास्थ्य है, धरणं–शरीर को धारण करने वाला जल ही है, भेषजं उदक औषध है, जलाषं–आराम देने वाला यही जल है, क्षत्त्रम्–क्षत् अर्थात् व्रण, फोड़ा, फुनसी तकलीफ आदि से 'त्र' अर्थात् बचाने वाला जल ही है। अन्नः उदक ही अन्न है, वारि–सब दोषों का निवारण करने वाला उदक है इसके अतिरिक्त वेदों में जल चिकित्सा के विषय में कहा गया है–

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशंभुवमापश्च विश्वभेषजीः।।[7]

अर्थात् उदकों में सब दवाइयाँ हैं। अग्नि सब सुख देने वाला और जल औषधियों से युक्त है।

आपोः विश्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम्।[8]

अर्थात् जल निश्चय ही औषधी है, जल, रोगों को हटाने वाला है, जल सब रोगों की दवा है, वह जल तेरे लिए औषध बने। इसमें औषधीय गुण होने के कारण ऋषि ने जलतत्त्व की दैवतभाव से उपासना की है। जल का स्वभाव प्रवहरणशील है।

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम।।[9]

हे जल,, हमारे शरीर में व्याधिनाशक औषधि धारण करायें।

ऋग्वेद का देव इन्द्र महान् देव है, यह वृत्र को मारकर अवरुद्ध जल की धाराओं को मुक्त करता है और जल की धाराएँ प्रवाहित होने लगती हैं। अपने विशिष्ट गुणों द्वारा यह जल रोगों का निवारण करता है, आरोग्य प्रदान करता है अमृतरूपी जीवनप्रदायी जल का बन्धन समीचीन नहीं है, बन्धन से अमृत जल विषरूप हो जात है और आरोग्य प्रदान करके अनेकानेक रोगों का कारण बन जाता है तथा शुद्ध होने पर जीवनदायी प्राणदायक हो जाता है और इस तरह उपकारक देवस्वरूप जल से पर्यावरण संरक्षण स्वतः ही सिद्ध हो जाता है– यजुर्वेद में स्पष्ट निर्देश है–

माऽपो मौषधीर्हिंसीः।[10]

अपः पिन्वौषधीर्जिन्व।[11]

अर्थात् जल को प्रदूषित न करें और वृक्ष–वनस्पतियों को न काटें। जल को शुद्ध रखें और वनस्पतियों को लगावें।

'अग्निमीहे पुरोहितम्'[12]

पुरोहित अग्नि की प्रार्थना की गई है। वैदिक ऋषि की दृष्टि में यह अग्नि केवल पाचक, दाहक, प्रकाशक या ज्वलनशील पिण्ड ही नहीं है, अपितु दिव्यगुण सम्पन्न सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, अग्रगामी नेतृत्व करने वाला, सर्वाधिक रमणीय धनों का प्रदाता है। मानवलोक का यह उपकारक रक्षक है जैसे –

स नः पितेव सूनवे ऽग्ने सूपायनो भव।[13]

इसी भाव से यह मानव की रक्षा करता है एवं कल्याणकारी कार्यों को सुनियोजित करता है। यह अग्नि समस्त प्राणियों के अन्तः में अवस्थित है। इसलिए अग्नि की वैश्वानर नाम से भी प्रसिद्धि है। अग्नि अभीष्ट कार्य को सिद्ध करता है। देवमण्डल में इसे श्रेष्ठ कहा गया है, अग्निमुखा ह वै देवाः। रूप से सभी देवताओं को अग्नि मुखवाला कहा गया है। अग्नि ही यज्ञ में सभी देवताओं के पास यज्ञ–भाग को आहुति द्वारा पहुँचाता है। यह अग्नि चेतन मानव–संवेदना से समन्वित है। अथर्ववेद में भी अनेक स्थलों पर अग्निदेव को हितकारी, रमणीय

धन प्रदायक देवों के पास हव्य ले जाने वाला रूप से प्रकाशित किया है।

अभ्यर्चत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत् पवन्ताम्।।[14]

अग्नि के इसी प्रकार स्थूल तथा सूक्ष्म बहुशः रूपों का वर्णन कर ऋषियों ने पर्यावरण–प्रदूषण के समाधान का सूत्र दिया है जिससे मनुष्य सुव्यवस्थित रूप से रहते हुए शत वर्ष तक जीवित रह सके।

प्राणिजगत् के लिए वायु अत्यन्त उपकारक है। इसके बिना प्राणरक्षा की कल्पना भी नहीं की जा सकती है, ऋग्वेद में भी वायु अमृत का निधि है, हमें जीवन शक्ति दे–

यददो वात ते गृहे ऽमृतस्य निधिर्हितः
ततो नो देहि जीवसे।।[15]

जीवनदाता वायु देवता की ऋषि प्रार्थना करते हैं। वायु सभी तरफ से स्वास्थ्यप्रद औषधियाँ ले आता है, और हमारे शरीर को रोग रहित करके परिपुष्टि प्रदान करता है–

वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे।।[16]

सुन्दर स्वास्थ्य एवं आरोग्यमय जीवन देने के कारण वायुदेव के गुणों व उनसे प्राप्त फलों के साथ–साथ प्रतिकूल व्यवहार करने वालों का वर्णन बहुशः उपलब्ध होता है। शुद्ध वायु दूर–दूर से औषधीय गुणों को लाकर रोगों का निराकरण करता है तथा मनुष्यों के शरीर का पोषण एवं संरक्षण करता है वायुदेव दीर्घायु प्रदान करते हैं।, पालक, रक्षक, तथा पिता होने से भरण–पोषण, कर्त्ता, भर्त्ता, और सुखदायक सखा है। जीवेम शरदः शतम्।। मानव की कामना को पूर्ण करता है, इसलिए वायु प्रकृति का सामान्य तत्त्व न होकर एक विशिष्ट देव हैं मनुष्यों का यह पर्यावरण है, जीवन प्रदाता वायु को प्रदूषित करने की कल्पना ही नहीं हो सकती, इसकी स्वच्छता के प्रति वैदिक मानव बहुत जागरूक थे, यज्ञ, अनुष्ठान, वृक्षारोपण द्वारा वायु की स्वच्छता, शुद्धता बनायी रखी जाती थी, वृक्षों को न काटने का संकेत करते हुए ऋग्वेद में कहा गया–**मा काकम्बीरमुद् वृहो वनस्पतिमशस्तीर्वि हि नीनशः।**[17]

वृक्ष प्रदूषण को नष्ट करते हैं अतः इन्हें न काटो, शीतल मन्द सुगन्ध वायु की स्वच्छता, शुद्धता बनी रहे एवं वायु के उत्तम गुण विद्यमान रहे। प्राकृतिक पर्यावरण से ऊर्जा लेकर जीवनधारण करते हुए वेदों में ऋषि का रोम–रोम अन्तः स्फूर्त प्रेरणा से मुखरित होता है। प्रकृति का कोई अंश वैदिक ऋषि की चेतना से अननुभूत नहीं है, उसका कोई पक्ष उसकी दृष्टि से अलक्षित नहीं रह गया है। प्रकृति के विविध रूपों की भाँति उसके अनुग्रह के लिए उत्सुक ऋषियों की अभिव्यक्ति का स्वरूप भी विविध है, समग्र सृष्टि प्रारूप का दर्शन, समत्व का

बोध पर्वत, वायु, आदि घर्षण से, नदियों में मल विसर्जन से मृत हो जाते हैं। वृक्ष भी सम्मान से प्रफुल्लित तथा असम्मान से मृत होते हैं। बिल्व, वृक्ष, निम्ब, अश्वत्थ आदि वृक्ष जिनकी यजुर्वेद में आराधना है, वर्तमान में उनमें देवत्व की उपेक्षा के कारण पर्यावरण की समस्या है।

वैदिक ऋषि मानव की शक्तियों को जानते थे और उसकी दुर्बलताओं को भी। उस समय पर्यावरण प्रदूषण जैसी कोई समस्या नहीं थी तथापि मानव स्वभाव को जानने वाले ऋषियों ने वैदिकवाङ्मय ने जीवन की इस प्रकार व्याख्या की है जिससे पर्यावरण प्रदूषण की समस्या ही न उत्पन्न हो। आगे चलकर होने वाली समस्या के प्रति मानव को पहले से सचेत कर दिया कि प्राकृतिक वस्तुओं को न छेड़ना, इन्हें बिगड़ने न देना, इनका संतुलन बनाये रखना पर्यावरण की सुरक्षा के लिए सर्वाधिक उपयोगी है। पर्यावरण वैज्ञानिकों के अनुसार वृक्ष जीवनदायक एवं स्वास्थ्यप्रद आक्सीजन छोड़ते हैं तथा जीवन के लिए हानिकारक वायु को अपने में ग्रहण कर लेते हैं। वृक्ष, वनस्पतियों के इसी महत्त्व को दृष्टिगत रखते हुए यजुर्वेद में वृक्षों वनस्पतियों औषधियों एवं वनों को नमस्कार किया गया है एवं हितकारी व शान्तिदायक होने की कामनायें की गई हैं–**नमः वृक्षेभ्यः।**[18]

नमो वन्याय च।[19]

वनानां पतये नमः।[20]

वारिवस्कृतायौषधीनां पतये नमः।[21]

ओषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिः।[22]

इस प्रकार इन सभी से अनुकूलता मंगल की कामना ऋषियों ने सावधान चित होकर किया है। भौतिक, प्रकृतिक पर्यावरण रक्षण के साथ ही ऋषियों ने आन्तरिक पर्यावरण स्वच्छता पर उदात्त जीवन मूल्यों के रक्षण पर बल दिया है,वेदो में वर्णित पर्यावरण संरक्षण की इन परिकल्पनाओं का यदि सम्यक् रीति से पालन किया जाये तो इसमें सन्देह नहीं कि विश्व की ज्वलन्त समस्या का समाधान हो सकेगा। पर्यावरण में असन्तुलन का मुख्य कारण मनुष्य ही रहा है, अतः उसे जाग्रत होना है, उपनिषदों में कहा गया है–**''उत्तिष्ठ जाग्रत वरान्निबोधत''**[23] क्योंकि मानवीय दृष्टिकोण ही विनाश को रोक सकता है, पर्यावरण में नदी, जल, वन, पर्वत, पशु–पक्षी,वायु आदि के साथ हमारी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक परिस्थितियाँ भी संतुलन व संरक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं ।

संदर्भ–सूची

1. अथर्ववेद – (12/1/10)
2. अथर्ववेद – (12/1/6)
3. यजुर्वेद– (36/13)
4. अथर्ववेद – (1/5/17)

5. अथर्ववेद – (पैप्पलाद शाखा–1/1)
6. निघण्टु
7. ऋग्वेद – (1/23/20)
8. अथर्ववेद – (6/91/3)
9. अथर्ववेद – (1/6/3)
10. यजुर्वेद – (6/22)
11. यजुर्वेद – (14/8)
12. ऋग्वेद – (1/1/1)
13. ऋग्वेद – (1/1/9)
14. अथर्ववेद– (7/82/1)
15. ऋग्वेद – (10/186/3)
16. ऋग्वेद – (10/186/1)
17. ऋग्वेद – (10/186/3)
18. ऋग्वेद – (6/46/17)
19. यजुर्वेद – (16/17)
20. यजुर्वेद – (16/34)
21. यजुर्वेद – (16/18)
22. यजुर्वेद – (16/17)
23. यजुर्वेद – (36/17)